International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 25-08-2023, Accepted: 24-09-2023, Published: 10-10-2023
Volume 9, Issue 5, 2022, Page No. 52-55

मीराबाई के काव्य में कृष्ण भक्ति का स्वरुप

शिवानी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

सारांश
भक्ति मनुष्य के आंतरिक मन की वह चेतना है, जो उसकी लघुता को विराटत्व में परिवर्तित करने की क्षमता रखती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता हैं कि यह विराटत्व अर्थात् अलौकिक धरातल की ओर ले जाने में सक्षम है और तब मनुष्य अपने भीतर की रिक्तता को पूर्णता में बदल देने की कल्पना करता हैं। जो आत्मा और परमात्मा के मध्य एक तादात्म्य स्थापित करने का सूत्र बनता हैं। ईश्वर के प्रति आत्मा को समर्पित कर देने का नाम ही भक्ति हैं। भक्तिकाल में एक ऐसी ही भक्ति का स्वरुप हमे मीराबाई के काव्य में प्रदर्शित होता है। मीरा कृष्ण भक्तों में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखती हैं। मीराबाई भारतीय जनमानस में आस्था व श्रद्धा का प्रतीक हैं। इनकी प्रासंगिकता इसी तथ्य को उजागर करती हैं कि अपनी प्रगतिशील व्यक्तित्व से जनमानस का मार्ग प्रशस्त करती हैं साथ ही भक्ति में प्रेममय होकर श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अद्भुत अनन्य प्रेम भावना को व्यापक व उदात्त भाव प्रदान करती हैं। इस शोध आलेख में मीराबाई के काव्य में कृष्ण के स्वरुप को दर्शाया गया है।

मूल शब्दः विरानुभूति, परमात्मा, विराटत्व, दृष्टिगत, आत्मविश्वास, स्वर्णयुग, आत्मसात, अलौकिक, संप्रदाय, मानसिकता, माधुर्यमयी

प्रस्तावना

भक्ति–भावना मन की उन अंतर्लहरियों से उत्पन्न होती हैं, जो प्रेम और श्रद्धा से होते हुए अपने वास्तविक स्वरुप को प्राप्त करती हैं। भक्ति का स्वरुप स्पष्ट करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते है –

"श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति हैं।"[1]

भक्ति से श्रद्धा और प्रेम को अलग नहीं किया जा सकता। भारत में भक्ति मार्ग प्राचीन काल से प्रशस्त था। नारद ने भक्ति को परिभाषित इस प्रकार किया– 'सा त्वस्मिन परम् प्रेमरूपा अमृत स्वरूपा चा' अर्थात् वह ईश्वरीय प्रेम जो अमृत के समान फलदायक हैं वही वास्तविक भक्ति हैं।

भारत के मध्यकाल का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, भक्ति आंदोलन का उदय और विकास। भगवत सेवा द्वारा भक्ति ही मनुष्य की मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रमुख साधन बना क्योंकि ईश्वरीय प्रेम की अनुभूति से ही मनुष्य सांसारिक प्रवृत्तियों का शमन कर पाता हैं। पूर्वमध्यकाल का मूल तत्व भक्ति ही हैं। जॉर्ज ग्रियर्सन ने भक्तिकाल को स्वर्णयुग कहा हैं जिसका प्रमुख कारण इस काल की विराटता हैं। तेरहवीं से सोलहवीं शताब्दी के मध्य देश के विभिन्न भागों में कृष्ण काव्य को रचने वाले कवि, कवयित्री हुई हैं उनमें से एक प्रमुख नाम है– मीराबाई जिनका माधुर्यमयी कृष्ण काव्य भक्ति का श्रेष्ठ रूप हैं।

मीरा मध्यकाल के कृष्ण उपासक भक्तों में सर्वोच्च स्थान की अधिकारी हैं। उत्तर भारत में भक्ति का जो स्रोत अपने पूर्व वेग से प्रवाहित हुआ उसमें मीरा का अतुलनीय व अविस्मरणीय योगदान हैं। भक्ति काल में भक्ति की दो धाराएं प्रमुख रूप से दृष्टिगत होती हैं सगुण तथा निर्गुण। मीरा ने सगुण भक्ति धारा को आधार बनाकर श्रीकृष्ण काव्य में भक्ति के पदों की रचना की। कृष्ण काव्य में भक्ति के सिद्धांतों को बहुलता से प्रचार कर जन–सामान्य में लोकप्रिय बनाया। मीरा के काव्य का क्षेत्र सीमित होते हुए भी है आज के समय में प्रासंगिकता धारण किए हुए हैं। जिनमें प्रमुख है– राग सोरठा, नरसी जी का मायरा, मीरा की मल्हार, मीरा पदावली, राग गोविंद, गीत गोविंद, गोविन्द टीका।

मध्यकालीन समय की सामाजिक संरचना में स्त्री को अपना स्थान बना पाना कठिन था क्योंकि उन्हें एक परंपरागत यथास्थिति में रहने पर विवश किया जाता था। ऐसे समय में मीरा राजवंश की परंपरागत सामंती व्यवस्थाओं से संबंध विच्छेद करती हैं और तत्कालीन समय व समाज के समक्ष एक चुनौती बनकर प्रस्तुत होती हैं। तत्कालीन समय और समाज में भक्ति से आत्मसात् कर पूर्ण हृदय से अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण के समक्ष भक्ति रूपी नैवेद्य लेकर समर्पित हो गयी। मीरा कृष्ण के रूप माधुर्य में इतनी डूब गयी कि अन्य किसी की कोई परवाह ही नहीं करती–

"बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ।"[2]

माधुर्य काव्य की आत्मा भी हैं और प्राण भी। मीरा की समस्त भक्ति साधना कृष्ण के अवतारी रूप पर केंद्रित रही हैं क्योंकि मीरा ने कृष्ण की भक्ति पति के रूप में की हैं उन्होंने बचपन में ही श्रीकृष्ण को अपना पति मान लिया था। गिरधर के अतिरिक्त उन्होंने किसी का वरण नहीं किया वह स्पष्ट कहती है–

"म्हारे री गिरिधर गोपाल दूसरौ न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।"[3]

मीरा का प्रेमी जगत का प्राणी नहीं हैं, यहीं मीरा की भक्ति न केवल अलौकिक रहस्यमयी रूप धारण कर लेती हैं अपितु अपने भक्ति रूपी प्रेम को लौकिक प्रेम में परिवर्तित करना चाहती हैं। वह तो सृष्टि कर्ता हैं, मीरा अपना संबंध कृष्ण से जन्म–जन्मांतर का बताती है–

"मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरब जणम के साथी।"[4]

मीरा का प्रेम संयोग–वियोग दोनों पक्षों को लेकर चलता हैं, परंतु मीरा के संयोग प्रेम पक्ष में भी विरानुभूति हैं। वहां अपने इष्ट श्रीकृष्ण के प्रति दर्द का उत्कर्ष दिखता हैं। मीरा का विरह तो

परंपरागत हैं परंतु कहीं भी उसका पिष्ट–प्रेषण मात्र नहीं हैं, विरहणी के अंतर्मन की व्याकुलता मिलती है–

"मैं हरि बिन न जीऊं माई।
पान ते पीरी भई मीरा, विथातन छाई।।
लाल गिरिधर की दासी मीरा उपजी सुखदाई।
अबके दरसन देहु मोहि न मुक्ति है जाई।
मैं हरि बिन न जीऊं माई।"[5]

मीरा में भक्ति–भाव अकस्मात् जागृत नहीं हुआ बाल्यकाल से ही उनमें भक्ति के संस्कार उत्पन्न हो चुके थे, जिसका प्रमुख कारण था मीरा का पितृ कुल (यशस्वी मेड़तिया राठौड़ वंश) जो परम वैष्णव था। जिस कारण वह आरम्भ से ही अपनी कृष्ण भक्ति के लिए प्रतिबद्ध थी। यह कहना अतिश्योक्ति न होंगी कि मीरा में भक्ति का सूत्रपात अनुवांशिकता के आधार पर हुआ। एक छोटी सी बालिका का प्रेम बीज रूप में उत्पन्न हुआ और समय के साथ–साथ युवावस्था में पल्लवित पुष्पित हुआ। इसी कारण उन्हें किसी गुरु के प्रति समर्पित नहीं होना पड़ा और उनकी भक्ति भावना संप्रदायों से मुक्त रही।

काव्यशास्त्र में वर्णित विरह की दस–दशाओं का वर्णन मीरा के काव्य में परिलक्षित हुआ हैं, परंतु साथ ही इसके विपरीत मीरा की कविता में स्त्री आकांक्षा, इच्छा और आत्मविश्वास दृष्टिगत होता हैं। मीरा का जीवन और उनका काव्य दोनों ही पुरुष सत्तात्मक सामंती व्यवस्था के सामने प्रश्नचिन्ह लगाते हैं, जो उन्हें विशिष्टता प्रदान करता हैं, कृष्ण को खुले रुप से पति स्वीकार करना, पारंपरिक पर्दा ठुकरा कर एक तारे पर कृष्ण के पद गाना, साधु संगति में शामिल होना। मीरा ने स्पष्ट रूप से समाज की विकृत मानसिकता, रूढ़ियों (जो भक्ति के मार्ग में स्त्री–पुरुष में अलगाव उत्पन्न करती है) के खिलाफ विद्रोह किया उनका विरोध सामान्य न होकर व्यापक था। प्रेम करना ही स्वतंत्रता का प्रथम लक्षण हैं और इसका सशक्त उदाहरण बना मीरा का काव्य। मीरा की भक्ति भावना एक समर्पित साधक की भांति थी, जिसमें उनकी एक ही प्रबल इच्छा थी, श्रीकृष्ण की आराधना में जीवन आहुति को अर्पण करना।

"मीराबाई अत्यंत उदार, मनोभावापन्न भक्त थी। उन्हें किसी पंथ विशेष का आग्रह नहीं था। जहाँ कही भी उन्हें भक्ति या चरित्र मिला वहीं उन्होंने उसे सिर माथे चढ़ाया हैं।"[6]

मीरा की भक्ति कृष्ण उपासक भक्त या कृष्ण संप्रदाय के भक्त कवि ही नहीं अपितु राम उपासक भक्त कवि भी मानते हैं, जब नाभादास कहते हैं–

"लोक–लाज कुल श्रृंखला तजि मीरा गिरिधर को भजि।"[7]

मीरा को अपनी भक्ति में किसी भी प्रकार की बाधा स्वीकार्य न थी एक स्त्री का भगवत् भजन में लीन रहना अनुचित माना जाता था जिससे मीरा के परिवार में गृह क्लेश होता परिणामस्वरुप उनके भगवत् भजन में बाधा पड़ती थी, वह गृह त्याग करना चाहती थी परंतु गृह त्याग तत्कालीन समय में एक स्त्री का अनैतिक कार्य था और नैतिक समर्थन मिलना असंभव था परंतु मीरा द्वारा गृह त्याग भी होता हैं तब मीरा घर छोड़कर वृंदावन चली जाती हैं। स्थितियों को झेलते हुए मीराबाई दिन–प्रतिदिन भगवत् भक्ति में अधिकाधिक लीन होती चली गई। मीरा गिरधर भक्ति में मगन श्रीकृष्ण की प्रतिमा के समक्ष कृष्ण भक्तों के साथ भाव भक्ति में विभोर होकर नृत्य करती क्योंकि कृष्ण के अतिरिक्त मीरा के लिए अन्य कोई पुरुष था ही नहीं–

"म्हाँ गिरिधर आंगा नाच्यारी (टेक)
णाच णाच म्हा रसिक रिझावा, प्रीत पुरातन जच्याँ री।
साधा ढिग बैठ – बैठ लोक लाज खूया।
भगत देखयाँ राजी हवयां जगत देखयाँ रुयां।"[8]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखते है–

"जिस तरह गोपियों की आसक्ति गोपीकृष्ण के प्रति थी, मीरा का प्रेम भी उन्हीं जैसा था। प्रेम के आलम्बन भी श्रीकृष्ण ही थे, परन्तु मीरा के इस भाव पर किसी का प्रभाव नहीं था। कृष्णभक्ति परम्परा में श्रीकृष्ण की प्रेममय मूर्ति को लेकर प्रेमतत्त्व की विशद रूप से अभिव्यंजना हुई हैं। कृष्ण भक्तों को उपास्य गोपीकृष्ण उन गोपिकाओं से घिरे हुए गोकुल के श्रीकृष्ण हैं, जो गोपिकायें प्रेमोनमत्त हैं कृष्ण के जिस मधुर रूप को लेकर भक्त कवियों की टोली चले, वह हास–विलास की तरंगों से परिपूर्ण अनंत सौन्दर्य का समुद्र हैं।"[9]

मीरा का वास्तविक संघर्ष पति भोजराज की मृत्यु के उपरांत शुरू हुआ। मीरा पति की मृत्यु के पश्चात् परंपरागत अवधारणाओं का सीधा–सटीक विरोध करती हैं, वह सती नहीं होती अपितु भक्तिन हो गई। पति की मृत्यु उपरांत भी मीरा ने अपना शृंगार नहीं उतारा क्योंकि मीरा स्वयं को गिरधर की परिणीता मानती हैं। मीरा को पूर्ण विश्वास है कि उनके पति अजर–अमर है–

"जग सुहाग मिथ्या री सजनी, होवाँ हो मिट जाती।
वरन करयां अविनाशी म्हारो, काल व्याल रण खासी।"[10]

मीराबाई ने भक्ति को एक नया आयाम दिया हैं एक ऐसा स्थान जहां भगवान ही मनुष्य का
सब कुछ होता हैं मीरा ने सांसारिक सुखों (राजघराने) को त्याग कर ऐसा कष्टप्रद जीवन जिया जिसमें उन्हें कदम–कदम पर विषमताओं का सामना करना पड़ा परन्तु उन्हें धुन थी तो अपने सांवरे श्रीकृष्ण की। यही उनकी भक्ति का लक्ष्य और अभीष्ट हैं–

"नारी का वैधव्य होना भारतीय समाज में सबसे बड़ा अभिशाप हैं। खासकर रूप और यौवन से भरे अवस्था में वैधव्य का शिकार होना। मीरा के साथ ही यही हुआ। वह विषाद में डूब गयी और उन्होंने अपना मन गिरिधर की ओर मोड़ दिया। उनका मार्ग रोका गया, विरोध तो उत्कर्ष पर था, वर्जनाओं का मीरा को सामना करना पड़ा, लेकिन यह सारी विघ्न–बाधाएँ मीरा को डिगा नहीं सका।"[11]

मीरा को भौतिक बंधन अर्थात् सांसारिकता की कोई लालसा नहीं वह संसार को ही मिथ्या मानती हैं, मोह–माया के भंवर रूपी जाल से पूर्णता मुक्त है–

"भोसागर जग बंधन झूठो, झूठाँ कुलराँ न्याती।
पल–पल थारा रूप निहाराँ, निरख – निरख मदमाती।"[12]

प्रेम का परिष्कृत एवं शुद्ध रूप भक्ति हैं। जो भक्ति सोद्देश्य तथा निस्वार्थ, निश्छल भाव से की जाती हैं, वह भक्ति आराधना के उच्चतम सोपान पर विराजमान होती हैं। मीरा को किसी भांति चौन नहीं, केवल कृष्ण का नामोच्चारण करती हैं। श्रीकृष्ण की मोहनी मूरत, सांवली सूरत हृदय में बसी हुई हैं, इस कारण मीरा के प्राण श्रीकृष्ण दर्शन के प्रति आकुल हैं। मीरा का यह विरह

दिव्य हैं वह भक्ति और प्रेम दोनों का सामंजस्य स्थापित करता हैं–

"घड़ी एक नहीं आवड़े
तुम दरसन बिन मोय।
धान न भावै, नींद न आवै
बिरह सतावै मोय।"[13]

मीरा के मन में मिलन के तीव्र उत्कंठा हैं। प्रकृति से मानव का घनिष्ठ संबंध हैं, इसी कारण जब प्रेमी या प्रियसी अपने प्रिय से दूर हो तब प्रकृति ही एकमात्र साथी प्रतीत होती हैं, प्रेमी हृदय उसे ही अपना दुख–दर्द बताता हैं क्योंकि प्रकृति मानव की सहचरणी हैं, वह उसका उपहास नहीं करेगी। ऐसा ही भाव मीरा के काव्य में भी विद्यमान हैं। मीरा अपने गिरधर की अनुपस्थिति में प्रकृति में ही अपने प्रीतम कृष्ण को ढूंढती हैं। अपने प्रियतम कृ ष्ण को प्रेमपूर्ण उलहना देती हैं–

"तनक हरि चितवाँ म्हारी ओर।
हम चितवाँ थे चितवों ना,
हरि हिवड़ो बड़ो कठोर,
म्हारो आसा चितवण थारी, ओर णा दूजा ओर,
उभयाँ ठाढ़ी अरज करूँ हूँ, करताँ – करताँ भोर।"[14]

मीरा को श्रीकृष्ण कांत रूप में प्राप्त हो चुके हैं। व्यक्ति के जीवन में जिस प्रकार प्रेम आवश्यक हैं ठीक उसी प्रकार मर्यादा भी महत्वपूर्ण हैं मीरा इस तथ्य से भलीभांति परिचित हैं वह प्रेम का निर्वाह पूर्ण मर्यादा से करती हैं, जब प्रियतम मिलने आते हैं तब वह लाज से छिप जाती हैं। प्रेम की नित नई अभिलाषा मीरा के हृदय में उत्पन्न होती हैं, यही भाव प्रेम आलिंगन की प्रगाढ़ता की चरम स्थिति को दर्शाता हैं–

"मैं गिरधर रंग रीत, सैया मैं गिरधर रंग रीत।
पंचरंग चोला पहन सखी मैं झिरमिट खेलन जाती।
ओह झिरमिट मां मिल्यो सांवरो, खोल मिली तन गाती।"[15]

मीरा हर उस बाधा को त्याग देना चाहती है, जो प्रिय मिलन में रुकावट बने। मीरा केवल कृष्ण का सानिध्य चाहती हैं, यही उनके प्रेम की ललक, उत्साह और आकर्षण हैं। बिना किसी लांछनाओं की परवाह किए मीरा केवल कृष्ण प्रेम वर्षा में सराबोर होना चाहती हैं। मीरा के संयोग के चित्र मधुर हैं, जिनमें विविधता हैं, कहीं कृष्ण के सगुण रूप का चित्रण हैं तो कहीं निर्गुण ब्रह्म के स्वरुप के दर्शन होते हैं।

मीरा, श्रीकृष्ण की भक्ति में प्रेम दीवानी हो गई, उनके इस दीवानेपन की उत्कर्ष एवं अलौकिकता को उनके स्वजन भी न पहचान सके, इसी का परिणाम हैं कि मीरा को 'कुलनाशी' की संज्ञा से अभिहित किया गया। मीरा इस बात की परवाह नहीं करती की कृष्ण उनसे प्रेम करते हैं या नहीं वह तो बस कृष्ण प्रेम दीवानी है, मीरा में कृष्ण की लगन हैं, अपने गिरधर के बिना मीरा जीवन को व्यर्थ मानती हैं। इनके साध्य और साधन दोनों मात्र श्रीकृष्ण हैं। वह अपने साध्य के प्राप्ति हेतु अन्य किसी अवलंबन को आवश्यक नहीं मानती। इस तरह की भक्ति जहाँ साध्य और साधन का भेद नष्ट हो जाता हैं, वह भक्ति पराभक्ति में परिवर्तित हो जाती हैं। मीरा की भक्ति की यही आधारशिला हैं, इस दृष्टि से मीराबाई की भक्ति का अवलोकित दृष्टि द्वारा विश्लेषण किया जाए तो वह भक्ति प्रेमा भक्ति की कसौटी पर पूर्णतः खरी उतरती हैं।

मीरा ने गिरधर नागर की भक्ति माधुर्य भाव से की जिसमें भक्त ईश्वर को अपने पति के रूप में देखता हैं। इसी रूप में ईश्वर को पूजता हैं और स्मरण, वंदन करता हैं। मीरा की भक्ति के स्वरूप का निर्धारण प्रेमा भक्ति हैं, प्रेमा भक्ति का आकर्षण अलौकिक होता हैं अर्थात् स्वयं ही भगवत् स्वरूप होता हैं। यही मीरा की भक्ति की विशेषता हैं। मीरा कृष्ण भक्ति में स्वयं राधा बन गई। मीरा ने अपने इष्ट देव कृष्ण की उपासना राधात्मक भाव से की हैं, इसलिए मीरा स्वयं को राधा का अवतार भी मानती हैं–

"कोई म्हारो जन्म बारम्बार। रास पूणों जनमिया री राधिका अवतार।"[16]

मीरा स्वयं में एक आदर्शवादी धर्म परायण हिंदू स्त्री हैं। एक पतिव्रता स्त्री के कर्तव्य का पालन करती हैं, मीरा के नारीत्व में विलास एवं भोग की वृति नहीं हैं, वह अपने प्रियतम गिरधर के दर्शन मात्र से ही स्वयं को सौभाग्यशाली मानती हैं। श्रीकृष्ण के श्री चरणों में ही अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया, कहा जाता है कि रणछोड़ जी की मूर्ति ने इन्हें अंतर्लीन कर लिया–

"अब मिली विछुरन नहिं कीजै।"[17]

श्रीकृष्ण के स्वरुप में एकाकार होना ही मीरा की अंतिम चेष्टा हैं। डॉ. कृष्णदेव शर्मा के अनुसार–

"समर्पण भाव स्वयं में प्रेम की पराकाष्ठा हैं। हिन्दू नारी के प्रेम का सर्वाधिक आलोकमय धरातल समर्पण भाव का धरातल होता हैं। अपने प्रियतम के लिए लोक–लाज और कुल मर्यादा की भी आहुति दे देती हैं। लौकिक जगत में सामान्य आकर्षण अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। केवल एक ही भाव, एक ही लक्ष्य बचा रहता हैं और वह हैं प्रियतम को रिझाना, उसके साथ एकाकार हो जाना। इस लक्ष्य का भाव स्वभावतः समर्पण और त्याग से ही संभव हैं।"[18]

मीरा का प्रेम कृष्ण भक्ति प्रेम लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों में दिखाई देता हैं। इस कारण पत्नी रूप की नवीन व्याख्या नवीन संदेश देती हैं।

निष्कर्ष

मीरा के प्रेम तथा भक्ति भावना का स्वरूप अत्यंत समृद्ध हैं। श्रीकृ ष्ण के प्रेम में उत्कंठित होकर मीरा का गृह त्याग देना एक ऐसी घटना हैं जो उनके प्रेम की प्रगाढ़ता को दर्शाती हैं। श्कुलकानि', 'कलंकिनीश जैसे संबोधन से भी मीरा की भक्ति में रंच मात्र भी परिवर्तन नहीं आता अपितु भक्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जाती हैं।

मीरा तत्कालीन समय में निर्भीकता से अपनी गिरधर भक्ति का पक्ष रखती हैं। इस निडरता ने जो वैधव्य मीरा के हृदय में प्रेम को जन्म दिया, वही कृष्ण के प्रति माधुर्य प्रेम था। मीरा की गिरधर भक्ति विवशता नहीं थी, मीरा ने श्रीकृष्ण के विविध रूपों के दर्शन किये थे अब अन्य किसी का वह अपनी दृष्टि में स्थान नहीं चाहती क्योकि इन नेत्रों ने गिरधर के दर्शन किये हैं। मीरा विपरीत परिस्थितियों में भी एकमात्र गिरधर को ही अपना प्राणतत्व मानती हैं। अनेक प्रकार की यातनाएं तथा निंदा से भी विचलित नहीं होती और कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति का आह्वान करती हैं। मीरा का जीवन संघर्षमय हैं, मीरा का विष का प्याला, अमृत में बदल जाता हैं यही भक्ति मीरा की अपने इष्टदेव के प्रति भक्ति वैशिष्ट्य को नया आयाम देती हैं। मीरा और मीरा की

भक्ति गिरधर नागर के प्रति दोनों ही अविस्मरणीय हैं, मीरा युगों–युगों तक हिंदी साहित्य में अपनी कृष्ण भक्ति के लिए अमर हो गई।

संदर्भ सूची

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग–1, इंडियन प्रेस लिमटेड, 2010, पृ –19
2. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, 2008, पद संख्या – 46
3. डॉ. शेखर कुमार, मीरा का काव्य और भक्ति आंदोलन, संजय प्रकाशन, 2019, पृ. सं.–47
4. उपरोक्त पृ. सं – 62
5. उपरोक्त पृ. सं – 53
6. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, 2015 पृ. सं.– 121
7. डॉ. शेखर कुमार, मीरा का काव्य और भक्ति आंदोलन, संजय प्रकाशन, 2019, पृ. सं.– 68
8. उपरोक्त पृ. सं.– 64
9. आ. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, 2014, पृ. सं.– 151
10. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, 2008, पृ. सं.– 156
11. उपरोक्त पृ. सं – 190
12. डॉ. शेखर कुमार, मीरा का काव्य और भक्ति आंदोलन, संजय प्रकाशन, 2019, पृ. सं.–52
13. गीता सिन्हा, प्रेम की प्रतीतरू आण्डाल, मीरा और महादेवी की रचनाओं का अध्ययन, संसथान प्रकाशन, 1983, पृ. सं.– 91
14. उपरोक्त पृ. सं.– 92
15. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, 2008, पद संख्या– 20
16. प्रो. मुरलीधर श्रीवास्तव, मीरा दर्शन, साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग, 1934, पृ. सं.– 79
17. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग एवं प्रवृत्तियां, अशोक प्रकाशन, 1977, पृ. सं.– 290
18. डॉ. कृष्णदेव शर्मा, मीराबाई पदावली, दिल्ली रीगल बुक डिपो, 1974, पृ. सं.– 66